North Asian International Research Journal of Social Science & Humanities

ISSN: 2454-9827 Vol. 6, Issue-11 November -2020

IRJIF I.F. : 5.010

Index Copernicus Value: 57.07 DOI NUMBER: 10.6947/2454-9827.2020.00009.9 Citation Index

A Peer Reviewed Refereed Journal

नाट्यशास्त्र में नारी

डॉ. योगेश्वरी फिरोजिया

वेद भारत वर्ष में ही नहीं अपितु विश्व साहित्य में उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। विद्वानों के अनुसार सृष्टि में मानव सभ्यता के उदय से ज्ञात इतिहास अर्थात् उस चिर "आदिकाल से वेद मानव जाति से सम्बद्ध है।"[1] वर्तमान समय में हमें विविध कलाओं यथा संगीत, नृत्य, काव्य तथा नाट्य कलाओं से संबंधित जो भी ज्ञान प्राप्त हैं, ये समस्त कलाऐं वैदिक युग से सम्बद्ध हैं। सरल शब्दों में कहें तो हमारे साहित्य की भांति सांस्कृतिक परम्पराएँ भी उतनी ही पुरातन एवं प्राचीन हैं। वैदिक साहित्य के पश्चात्वर्ती वात्स्यायन के कामसूत्र में चौसठ कलाओं में अन्य कलाओं की भांति नाट्यशास्त्र का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2]

भरतमुनि द्वारा रचित नाट्यशास्त्र भारतीय संस्कृत साहित्य का प्राचीनतम् ग्रंथ माना गया है। नाट्य शब्द 'नर अवस्पन्दने' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'कुछ–कुछ चलना', इसलिए नाट्य में सात्त्विक अभिनय की प्रचुरता होती है।[3]

नाट्य से तात्पर्य है भावों तथा अवस्थाओं की अनुकृति। इस अनुकृति में सौंदर्य व्यापार का योग आवश्यक होता है। लोक स्वभाव जब सौन्दर्य व्यापार के द्वारा अभिव्यक्त होता है, तब वह नाट्य होता है।[4]

नाट्यशास्त्र को भारतीय संस्कृत साहित्य में पंचम वेद माना गया है। इसका प्रयोजन वेद के अनुकूल धर्म, अर्थ, मोक्ष माना गया है। नाटक दृश्य और श्रव्य दोनों कलाओं का संश्लिष्ट रूप है। इसमें आंगिक, वाचिक और सात्त्विक तीनों पक्षों का प्रतिनिधित्व रहता है।[5]

एक समय देवराज इंद्र को अपना प्रतिनिधि बनाकर देवतागण ब्रह्मा जी के पास पहुँचे तथा उनसे निवेदन किया कि ''हे पितामह हमें ऐसे क्रीड़ानायक अथवा खेल की कामना है, जो श्रवण में मधुर एवं दृश्य रूप से सुंदर हो तथा जिसमें सभी वर्गों को समान स्थान प्राप्त हो।[6]

इस प्रकार संकल्प करके ब्रह्माजी ने चारों वेदों का स्मरण कर उनके सार–संकलन द्वारा पंचम वेद के रूप में नाट्यवेद का निर्माण किया। नाट्यवेद अर्थात् नाट्यशास्त्र। इस हेतु उन्होंने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद से गीत, यजुर्वेद से अभिनय और अथर्ववेद से श्रृंगारादि रसों का संग्रह किया तथा इनके अनुरोध पर ब्रह्माजी ने महामुनि भरत को अपने सौ पुत्रों (शिष्यों) सहित इसका पालन करने का आदेश दिया।[7]

प्रारंभ में भरतमुनि द्वारा जो प्रयोग किया गया, उसमें मात्र भारती, सात्वती और आरभटी वृत्तियों का ही योग था। भरतपुत्रों ने उक्त तीन वृत्तियों का प्रयोग सहजता से किया, किन्तु चौथी कैशिकी वृत्ति का प्रयोग वे न कर सके, क्योंकि इस वृत्ति के प्रयोग में सुकुमार साज–सज्जा, स्त्री सुलभ चेष्टाएँ, कोमल श्रृंगारोपचार की नितान्त आवश्यकता थी। ब्रह्माजी ने इस अल्पता का अनुभव कर नाट्य को सुन्दर बनाने हेतु अप्सराओं की सृष्टि की, इस प्रकार 'नाट्यवेद' में स्त्रियों का प्रवेश हुआ।

''कैशिकी ललित वृन्ति है। नाट्य का विषय कुछ भी हो, उसमें लालित्य का होना अत्यंत आवश्यक है। भरत के नाट्य प्रयोग में देवता और असुरों के युद्ध का वर्णन किया गया था। अर्थात् वह नाट्य का डिम या समवकार भेद था, उसमें प्रधान रस वीर या रौद्र था, किन्तु उसमें कैशिकी आवश्यक थी। कैशिकी का अर्थ है – सौन्दर्य व्यापार अतः कैशिकी के अभाव में नाट्य संभव नहीं हो सकता था।[8]

भरतकृत नाट्यशास्त्र में नारी का उल्लेख नायिका भेद के माध्यम से विस्तृत एवं व्यवस्थित रूप में प्राप्त होता है। नाट्यशास्त्र में नायिका–भेद का विचार यद्यपि 'रस' एवं 'भाव' के संदर्भ में आया है, तथापि जहाँ भी आया है, 'काम' का संदर्भ लेकर आया है। मानव या तो 'धर्म–काम' होगा अथवा 'अर्थ–काम' होगा अथवा 'मोक्ष–काम' होगा। 'काम तो काम ही है। आशय यह है कि काम पौरुष–प्रयत्न मात्र में निहित है।

स्त्री–पुरुष संयोग के मूल में प्रेरक–कामना 'राग' को जन्म देती है, जिसका पुष्ट रूप श्रृंगार है। लोक प्रवृत्ति सुखोन्मुखी है, और सुख का मूल है ''नानाशील नारी'' शील के आधार पर उसके अनेक रूप संभव हैं।

(क) यथा –

1. देवशीला	8. मानुजशीला	15. खरशीला
2. असुरशीला	9. वानरशीला	16. शूकरशीला
3. गन्धर्वशीला	10. हस्तिशीला	17. हयशीला
4. राक्षसशीला	11.उष्ट्रशीला	18.महिषशीला
5. नागशीला	12. मृगशीला	19. अजाशीला
6. यक्षशीला	13. मीनशीला	20, अश्वशीला
7. व्यालशीला	14. मकरशीला	21. गोशीला।[9]

(ख) अन्यत्र यह उल्लेख किया गया कि स्त्री की

1. बाह्य प्रकृति – वीरांगना
2. आभ्यन्तर प्रकृति – कुलीना
3. बाह्याभ्यन्तर प्रकृति – कृतशौचा (वेश्यावृत्ति त्याग कर प्रेमी के साथ शुद्ध रूप से रहने वाली)[10]

(ग) नाट्यशास्त्र में प्रेमातुर नायिकाओं की आठ अवस्थाओं के आधार पर निम्नलिखित भेद कहे गये हैं –

1. वासकसज्जा – स्वागतातुर
2. विरहोत्कण्ठिता – वियोगाशंका से व्याकुल
3. स्वाधीनपतिका – जिसका पति उसके वश में हो
4. कलहान्तारिता – कलह–प्रिया
5. खण्डिता – प्रिय के परस्त्रीरमण से भग्न हृदया
6. विप्रलब्धा – खिन्नमना
7. प्रोषितभर्तृका – पति–वियुक्ता
8. अभिसारिका – प्रिय–प्रतीक्षातुरा[11]

(घ) आलम्बन के अभाव और उसके सहभाव में नारी के तीन रूप संभव हैं –

1. मदनातुरा – रति के उद्रे में जो स्वयं को अनावृत कर दे।

2. अनुरक्ता – जो आलम्बन (नायक) के सद्भाव में अनुकूल चेष्टाएँ करे।

3. विरक्ता – जो आलम्बन (नायक) के सद्भाव में प्रतिकूल चेष्टाएँ करे।[12]

(ड.) नाट्यशास्त्र के पच्चीसवें अध्याय में कहा गया है कि नारी – मात्र की प्रकृति तीन प्रकार की होती है –

1. उत्तमा – जो अधिक समय तक कुपित नहीं होती, अपराध होने पर भी प्रिय से अप्रिय वचन नहीं कहती।

2. मध्यमा – जो क्षण में क्रोध, क्षण में गर्व और क्षण में प्रसन्नता दर्शाने वाली, काम–कुशल और प्रतिपक्ष के प्रति अनसूया रखने वाली हो।

3. अधमा – जो अकारण और असमय ही वृद्धि हो जाए। शील और अतिमानिनी हो।[13]

(च) यौवन के आधार पर भरत ने नारी की चतुर्विध यौवन लीला के अनुसार भी चार प्रकार की नायिकाएँ बताई हैं –

1. प्रथम यौवना – यौवनारंभ से 20 वर्ष तक

2. द्वितीय यौवना – 20 वर्ष से 30 वर्ष तक

3. तृतीय यौवना – 30 वर्ष से 40 वर्ष तक

4. चतुर्थ यौवना – 40 वर्ष की वय के बाद[14]

(छ) नाट्यशास्त्र के ही 34वें अध्याय में अन्तःपुर स्थित स्त्रियों के अन्य विभागों का भी विस्तृतोल्लेख प्राप्त होता है। यथा –

1. महादेवी 2. देवी 3. स्वामिनी 4. स्थापिता

5. भोगिनी 6. शिल्पकारिणी 7. नाटकीया 8. नर्तकी

9. अनुचारिका 10. परिचारिका 11. संचारिका 12. प्रेषणचारिका 13. महन्तरी

14. प्रतिहारी 15. कुमारी 16. स्थविरा

17. आयुक्तिका आदि।[15]

अंत में नायिका कैसी होनी चाहिए, इस पर विचार किया है। जो रूप, अर्थात् शारीरिक सौंदर्य से युक्त, श्रृंगार–प्रसाधन से भूषित, गुणशील, यौवन, माधुर्य, शक्ति से सम्पन्न, जो मधुर–वाणी युक्त हो, अभ्यास में नियमित, योग्य लय–तालज्ञ तथा रसमयी नारी ही नायिका पद पर प्रतिष्ठनीय है।[16]

(ज) प्रकीर्णक रूप में यत्र–तत्र सांकेतिक गुणों के आधार पर निम्न नायिका भेदों का उल्लेख मिलता है – 1. दिव्या, 2. नृपपत्नी, 3. कुलस्त्री तथा गणिका।

स्पष्ट है कि लोक–व्यवहार से संभावित नारी की आन्तर–बाह्य चेष्टाओं का अत्यंत विस्तार से विवेचन नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है।

नाट्यशास्त्र के पैंतीसवें अध्याय में प्रदत्त ''नायिका'' की अवधारणा से ज्ञात होता है कि उस मानदण्ड पर जब समस्त रूपों की चर्चा की गई है, वे सब ''नायिका'' की 'अर्थपरिधि'में नहीं आ

सकते। क्योंकि नाट्य लोक अर्थात् उसके भाव और काम का अनुकरण है। अतः अनेक तथ्य हैं जो नारी के संबंध में अभिनय का अंग बनकर अनुल्लेख्य है।

संस्कृत साहित्य में नायिका भेद से संबंद्ध चार परम्पराओं के ग्रंथ मिलते हैं –

1. विशुद्ध नाट्यशास्त्रीय परम्परा
2. विशुद्ध काव्यशास्त्रीय परम्परा
3. मिश्रशास्त्रीय परम्परा तथा
4. केवल नायक–नायिका भेदपरक परम्परा।

उपर्युक्त संदर्भ विशुद्ध नाट्यशास्त्रीय परम्परा का है। इसी परम्परा के ग्रंथ सागरनंदी प्रणीत 'नाटयलक्षणरत्नशेष' एवं 'दशरूपक' में नाट्यशाला को आधार बनाकर 384 नायिका भेद प्रस्तुत किए गए हैं।

नाट्यदर्पणकार हेमचन्द्र ने कुलजा, दिव्या, क्षत्रिया तथा पण्यकामिनी ये चार नवीन भेद/भावप्रकाश (शारदातनय) में नायिका का वर्णन श्रृंगार रस के आलम्बन में हुआ है। इनमें पूर्वोक्त भेदों के अतिरिक्त शारदातनय ने राजा भोजकृत उदात्ता, उद्दता, शान्ता और ललिता ये चार भेद भी सम्मिलित किए हैं।

विशुद्ध श्रव्य/काव्यशास्त्रीय परम्परा में नायिका भेद हेतु सर्वप्रथम अग्निपुराण को लिया जा सकता है। जिसमें नायिका भेद रसनिरूपण के 399वें प्रसंग में आता है।

नायिका के बारह अलंकारों की भी चर्चा की गई है। हाव–भाव, ईला, शोभा, क्रांति आदि रूद्रभट्ट (काव्यालंकार) भी नायिकाओं के नाट्यशास्त्र प्रणीत भेद किये हैं, किन्तु नायिकाओं की आठ में से मात्र चार अवस्थाओं को ही लिया है – प्रोषितपतिका, स्वधीनपतिका, खंडिता तथा अभिसारिका। रूद्रभट्ट (श्रृंगारतिलक)

यद्यपि सभी भेदों को अपने नायिका भेद में सम्मिलित करते हैं, पर वे उत्का और संचिता को 'कलहान्तारिता' और 'विरहोत्क्रान्ति' कहते हैं।

भोजराजकृत सरस्वती कण्ठाभरण के पंचम परिच्छेद में नायिका भेद पर विचार किया गया है कि नायिका अनुनायिका, प्रतिनायिका के (समान करके) 12 भेद होते हैं। नायिका सर्वगुण संपन्न तथा कथाव्यापिनी होती है। इससे कुछ कम पूजनीया उपनायिका है।

श्रृंगारप्रकाश के पन्द्रहवें प्रकाश में स्वकीया तथा परीकया के 143–143 भेद कहे गये हैं। वस्तुतः श्रृंगारप्रकाश उस सन्धिस्थल का ग्रंथ है – जहाँ नायिका भेद की चर्चा केवल दृश्यकाव्य में प्रसंग ही न होकर श्रव्यकाव्य के प्रसंग में भी है।

''काव्य का संवर्धन नायक–नायिका से होता है। अतः नायिका का विवेचन आवश्यक है।'' काव्यानुशासन।

विद्यानाथ के 'प्रतापरूद्र यशोभूषण में सामान्य नायिका के दो नवीन भेद हैं–

1. रक्ता 2. विरक्ता। जबकि साहित्य दर्पण आदि अन्य ग्रंथों में कोई नवीन भेद नहीं कहा गया है।[17]

इस प्रकार आचार्य भरत ने ब्रह्माजी के आदेश पर नाट्यवेद की रचना की। इसमें नाट्य के समस्त तत्वों का उल्लेख किया गया था, किन्तु नाट्यशास्त्र के अनुसार कथानकों का जब मंचन किया गया तो वह इस सृष्टि में असफल रहा, क्योंकि इस नाटक में श्रृंगार रस का अभाव था। ब्रह्मा जी ने जब इसका मंचन देखा तो उन्हें इस कमी का आभास हुआ। उन्होंने अभिनय के लिए अप्सराओं की सृष्टि की इस प्रकार नाट्यवेद में स्त्रियों का प्रवेश हुआ।

संदर्भ सूची

1. कमला, ऋग्वेद में नारी, पृ. 9
2. मुसलगाँवकर, केशवराव, हिन्दी दशरूपक, पृ. 15
3. मुसलगाँवकर, केशवराव, हिन्दी दशरूपक, प्रथम प्रकाश, पृ. 13
4. मुसलगाँवकर, केशवराव, हिन्दी दशरूपक, पृ. 20
5. भार्गव, सरोज, सौन्दर्यबोध एवं ललित कलाऐं, पृ. 93–94
6. नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग, प्रथमोऽध्यायः, शं.सं., 9–12, पृ. 3–4
7. नाट्यशास्त्र, प्रथम भाग, प्रथमोऽध्याय, श्लोक संख्या 17–19, पृ. 6–7
8. मुसलगाँवकर, केशवराव, हिन्दी दशरूपक, पृ. 17–19
9. नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग, चतुर्विंशोऽध्याय, श्लोक 101–143, पृ. 205–215
10. नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग, चतुर्विंशोऽध्यायः, श्लोक 151–152, पृ. 217
11. नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग, चतुर्विंशोऽध्यायः, श्लोक 210–211, पृ. 231
12. नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग, चतुर्विंशोऽध्यायः, श्लोक 19–27, पृ. 265–267
13 नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग, पंचविंशोऽध्यायः, श्लोक 37–42, पृ. 270–272
14 नाट्यशास्त्र, तृतीय भाग, पंचविंशोऽध्यायः, श्लोक 44–52, पृ. 272–275
15. नाट्यशास्त्र, चतुर्थोभागः, चतुस्त्रिंशोऽध्यायः, श्लोक 31–34, पृ. 455
16. नाट्यशास्त्र, चतुर्थोभाग, पंचत्रिंशोऽध्यायः, श्लोक 84–85, पृ. 496
17. गोयल, वंदना, परमार शिल्प में नायिकाएँ, पृ. 18

डॉ. योगेश्वरी फिरोजिया

सहा. प्राध्यापक

चित्रकला (ललितकला संकाय)

राजा मानसिंह तोमर संगीत एवं

कला विश्वविद्यालय, ग्वालियर–474002